वयस्कों के साहित्य की चर्चाएं पत्र-पत्रिकाओं में पर्याप्त रूप से छपती हैं। बच्चों के साहित्य पर अभी भी नियमित आवश्यक विचार विमर्श नहीं हो रहा है। ऐसा नहीं है कि बाल साहित्य नहीं रचा जा रहा है। कई अच्छे प्रकाशन बाल साहित्य के लिए ही समर्पित हैं लेकिन ऐसा लगता है कि वयस्कों की दुनिया में बाल साहित्य के लिए समुचित स्थान नहीं है। शिक्षा विमर्श के माध्यम से बाल साहित्य को विमर्श के केन्द्र में लाने का प्रयास है। हमारी कोशिश रहेगी कि बाल साहित्य पर समीक्षा नियमित रूप से प्रकाशित की जाये। पहली बार में हमने बीकानेर के वत्सल प्रकाशन से छपी पुस्तकों - प्रयाग शुक्ल की 'बच्चों के लिए कविताऐं' तथा मालचन्द तिवाड़ी की 'कुछ होने और कुछ न होने का पहाड़ा' - को चुना है।

मेरा मन धीरे-धीरे वहां चला जाये

❑ प्रभात

लुइ कैरोल की प्रसिद्ध कृति 'एलिस इन द वंडर लैण्ड' बच्चों के लिए है कि बड़ों के लिए ? ईरानी फिल्म 'चिल्ड्रंस इन द हैवन' बच्चों के लिए है कि बड़ों के लिए है ?

हिन्दी में एक दौर में खूब लोकप्रिय रही एक कविता है - 'मां कह एक कहानी।' इस कविता में बच्चा मां से कहानी सुनाने के लिए जिद करता है। कहानी की शुरुआत किस तरह से की जा सकती है इसके लिए अपनी ओर से सुझाव भी मां के सामने रखता है -

'मां कह एक कहानी
राजा था या रानी
.....
तू मेरी नानी की बेटी
कह मां लेटी ही लेटी।'

मां उसकी जिद पर एक ममता भरी झिड़की की चपत उसे लगाते हुए कहानी सुनाती है। कहानी भी ऐसी जिसमें उसके अपने जीवन के विवरण हैं। जिसमें सुन रहे बच्चे के स्वयं के जीवन के विवरण हैं -

'तू है हठी मान धन मेरे
सुन उपवन में बड़े सवेरे
तात भ्रमण करते थे तेरे
बही सुरभि मनमानी।'
बच्चा व्याकुल उत्सुकता के साथ दोहराता है-
'बही सुरभि मनमानी
हां मां यही कहानी।'

यह 'मां' यशोधरा है 'पुत्र' राहुल है और जिसकी कहानी कही जा रही है वह यशोधरा के पति राहुल के पिता 'गौतम बुद्ध' हैं। यशोधरा काव्य से उद्धृत यह अंश बच्चों और बड़ों को गहरे ढंग से प्रभावित करता है।

इसी तरह सर्वेश्वर की कविता है-

'बांध पूंछ में झण्डा आजादी का
चली लोमड़ी वस्त्र पहन खादी का।'

सफदर की कविता है - 'किताबें करती हैं बातें .....' जो बातें इस कविता में गिनायी हैं और जिस लय और जीवंतता के साथ वे इसमें आयी हैं, बच्चे-बड़े सबको अपने प्रभाव में ले लेती हैं।

घर में सुख की घड़ी में जैसे छोटे-बड़े सब समान रूप से खिले हुए होते हैं। दुख में जैसे बड़े ही नहीं बच्चे भी अपने आपको उतने ही गहरे सदमे में पाते हैं। घर में नवजात शिशु को एक पांच वर्ष की बच्ची या बच्चा जिस विस्मय और हर्षातिरेक से भीगकर देखता है, कई बार वैसी अनुभूति में जा पाना बड़ों के वश की बात नहीं रह जाती। मृत्यु के निविड़ अंधकार से बच्चे का मन भी उतना ही व्यथित और जड़ हो जाता है जैसा घर में किसी भी स्त्री या पुरुष का। जीवन जैसे बड़ों और बच्चों को समान रूप से स्पंदित करता है जीवन की पुनर्रचना भी वैसा ही करती है। यह सही है कि बच्चों के सीमित जीवनानुभव और सीमित बौद्धिक विकास किसी जटिल साहित्यिक कृति को समझने में उनकी स्वाभाविक सीमा है।

बच्चों और उनके संसार को केन्द्र में रखकर रची गई ज्यादा अच्छी कृतियां वे हैं जो केवल बच्चों के लिए होकर नहीं रह गईं बल्कि जिनने इस सीमा का अतिक्रमण कर जीवन और काल विशेष के ऐसे सत्य का उद्घाटन किया कि वे बड़ों को भी प्रभावित किये बिना नहीं रह सकीं।

प्रयाग शुक्ल के बच्चों के लिए लिखे गए कविता संकलन 'हक्का-बक्का' की कविताएं निरंकार देव सेवक, दामोदर अग्रवाल तथा स्वतंत्रता के बाद के आधुनिक कवियों में सर्वेश्वर, सफदर और गुलजार की परम्परा की कई कविताओं की तरह बच्चों के अलावा बड़ों का भी ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। हांलाकि 'हक्का-बक्का' संग्रह की नयी भाषा, नयी लय, नयी विषयवस्तु इत्यादि कई विशेषताओं के साथ-साथ कुछ स्पष्ट सीमाएं भी हैं। एक बड़ी सीमा यही है कि इन कविताओं में जो संसार है वह खाते-पीते मध्यवर्ग का संसार है। गांवों के बच्चों के लिए हरी, पीली, नीली, लाल आइसक्रीम और साइकिल किसी दूसरे ग्रह की कहानी सरीखी हैं। एक व्यापक जीवन का यथार्थ हालांकि इस संग्रह में नहीं है मगर जो है उसका अपना जादुई असर है इससे इंकार नहीं किया जा सकता।

'हक्का-बक्का' जैसे कविता-संकलन के बाद हम प्रयाग जी को एक अलग तरह की उम्मीद से देखने लगते हैं मगर जब इसके बाद आया उनका संकलन 'बच्चों के लिए कविताएं' देखते हैं तो यह उम्मीद कुछ टूटती-सी नजर आती है। बच्चों की कविताओं के संकलन के इस शीर्षक को सादा नहीं बल्कि सपाट कहा जाएगा। प्रयाग जी की एक खूबी यह है कि किसी दृश्य के सूक्ष्म अवलोकन को लयात्मक भाषा में बदलकर एक दृश्य को उसकी सुंदरता में उजागर करते हुए कलात्मक आस्वाद में बदल देते हैं। यह बात उनके 'हक्का-बक्का' संग्रह की कविताओं में देखी जा सकती है। मगर इस संग्रह को पढ़ते हुए लगता है जैसे अब वे अपने आप को दोहरा रहे हैं। जब कोई कवि अपने को दोहराने लगता है तो निश्चित रूप से वह अपने आपको पहले से कमजोर रूप में प्रकट करता है। संग्रह में चौदह कविताएं हैं। अगर हम प्रयाग जी को लगातार पढ़ते रहे हैं तो एक बारगी लगता है ये सब तो पढ़ा हुआ है, कुछ नया नहीं है। वही मुहावरा, वही भाषा, वही एक तरह का देखना, वही विषय वस्तु।

प्रयाग जी इस संग्रह में सपाट उपदेश से भी नहीं बच पाये हैं।

'कभी न खाना जल्दी-जल्दी
कुछ भी नहीं गिराना
बड़ा कीमती होता भाई
खाने का हर दाना।'

जबकि वे जानते हैं कि ऐसी बात अगर कविता में कहनी भी है तो कैसे कही जाती है।'चढ़ें पहाड़' कविता में उन्होंने बड़े स्वाभाविक ढंग से कहा भी है -

'आ जाती हैं घास झाड़ियां
चट्टानों की छाती फाड़।'

'ये घोड़ा सुन्दर' कविता में क्रमश: एक के बाद एक खिलौने हैं -

ये तितली पीली-पीली/ये चिड़िया नीली-नीली/ये खों-खों करता बंदर/ये घोड़ा कितना सुंदर'

दशकों पहले मैथलिशरण गुप्त ने एक कविता लिखी थी 'सर्कस'। उसमें भी एक के बाद एक जानवर आते हैं मगर उनके कारनामे आज भी हमारा ध्यान अपनी ओर खींचते हैं। वहां बंदर लैम्प जलाता है। पुस्तक खोलकर पढ़ता है।

प्रयाग जी की एक और कविता है - 'बहती जाए' यह 'कागज की नाव' को लेकर लिखी गई है-

'कागज की इक नाव बनाएं
उसको पानी में तैरायें
दूर कहीं वह बहती जाए
नहीं पलटकर हम तक आए
जाने किस नदिया में जाए
बहती-बहती चलती जाए
लहरें नाचें वह भी नाचे
दूर-दूर तक बहती जाए।'

अब इसके बाद बच्चों के बीच बेहद लोकप्रिय इस कविता को पढ़ें। यहां भी कागज की नाव है और बच्चा भी है। पर दोनों के बीच का रिश्ता, घटनाएं और अ-सपाट यानी मीठी लय कविता की एक-एक पंक्ति में किस तरह का जादू लिये है देखिए -

'एक छोटी किश्ती मेरे पास
उसको नई बनवाई
उसको नीली रंगवाई
और पानी में तैराई
एक मेंढ़क बैठा पानी में
उसने देखा / मुझको घूरा
फिर से देखा
और कूद गया किश्ती में
किश्ती डगमगाई
फिर से डगमगाई
और डूब गई पानी में।'

'झर-झर' कविता में बच्चों के आंख मीचकर बरसती बूंदों में खड़े हो जाने का सुपरिचित दृश्य है। जिसे कविता में पढ़कर मीठी स्मृति मन में घुल जाती है। इसी तरह 'कव्वा-कांव' कविता में भी सुंदर दृश्य है। दैनिक जीवन में जो कव्वा आंख से प्राय: ओझल रहता है और दिखता भी है तो प्राय: हम उसे ठहरकर नहीं देखते। प्रयाग जी प्रकृति की इन अनुपम हलचलों की ओर हमें नहीं झंकाएं तो शायद धीरे-धीरे हम इन्हें विस्मृत कर बैठें। 'कव्वे' को उनका देखना है -

'भागा-भागा जाता है

चलता है रुक जाता है
फिर कैसे मंडराता है
ऊपर वह उड़ जाता है।'

कम नयी बातों और अधिक पुराने दोहरावों वाले इस संग्रह के बारे में यदि प्रयाग जी से पूछा जाये तो वे भी शायद यह मानेंगे कि इस संग्रह में उन्होंने अपनी ही द्वितीय स्तर की रचनाओं को प्रकाशित करवाया है।

'कुछ होने और कुछ न होने का पहाड़ा' - मालचंद्र तिवाड़ी जी की कुछ सयानी कुछ तुतलाती उन्नीस कविताओं का संकलन है। इस संग्रह की एक दिक्कत यह है कि इसमें दो भिन्न आस्वादों की कविताएं गडमड चलती हैं।

इन कविताओं में शिल्प के स्तर पर मालचंद जी ने जो बने बनाये पैटर्न इस्तेमाल किये हैं वे भी साफ दिखाई देते हैं। शेर औ, शायरी वाला अंदाज देखिए-

'यूं तो कब आती है हंसी
आकर बहुत रुलाती है हंसी।'

नयी कविता का मुहावरा देखें -

'सपने में एक मेज थी
मेज में एक दराज थी
दराज में रखी थी खुशी।'

नवगीत का स्वर देखें-

'सोच हथेली, आग आंच से
खुद अपना तू, भाग बांच ले
छान ले मन का कोना-कोना
तल-अतल, संचित है कितना बल ?

गजल, नयी कविता, नवगीत के मुहावरे में ये जो बातें आयी हैं - इनका बच्चों के मानसिक संसार से दूर-दूर तक लेना देना नहीं है। दूसरे इन मुहावरों में बच्चों की कविताएं कहने के लिए इन्हें नये ढंग से खोजा नहीं गया है। अत: ये यहां अस्वाभाविक- असहज दिखलाई पड़ते हैं।

कुछ कविताएं लोक शैली पर आधारित हैं-

'एक था ढप, दस थे ढोल, ढप तो लुढक गया फूट गए ढोल।'

'जंगल की सैर' कविता भी इसी शैली की है -

'ढेले गए समंदर, वहां से आ गए बंदर, बंदरों ने गाया गीत,
तब से पड़ गई उल्टी रीत।'

बावजूद उधार के पैटर्न के कविताओं में बात उनकी अपनी है और जीवनानुभव इतने सच्चे हैं कि आपका ध्यान कंटेंट पर बना रहता है। लेकिन कविता में पैटर्न एक तरह की सीमा तो है ही। मालचंद जी मूलत: राजस्थानी के कथाकार हैं और कविता शायद उनके यहां द्वितीय स्तर पर अपनायी गई विधा है। वरना कोई वजह नहीं कि विषयवस्तु के साथ शिल्प के स्तर पर कलात्मकता उनके यहां न दिखाई दे।

बादल का गीत, झमेला, पांच बरस की कहानी और एक्सीडेंट इस संग्रह की अच्छी कविताएं हैं।

मगर एक बहुत अच्छी कविता है - 'बाजरे की माला' अद्भुत ऐन्द्रिकता है इस कविता में। सारे संसार में जैसे बाजरा फैला हुआ है। अपनी गंध और रोशनाई से जीवन को अनवरत रचता हुआ राजस्थान के लोगों का प्राण बाजरा। बाजरा इस कविता में उसी रूप, रस, गंध और स्पर्श के साथ उपस्थित है जैसा भादौ और कंवार के महीने में जीवन में। ये कविता आपके भीतर स्मृति कोष को ऐसे लिखती है कि आपका मन धीरे-धीरे सुदूर वहां चला जाता है जहां -

बाजरा रे बाजरा
कितना सारा बाजरा
खेत में खलिहान में
मण्डी में दुकान में
रोटी में राब में
खीच में किताब में
कितना सारा बाजरा !
हंडिया में हारे में
थोड़े में सारे में
बात में इशारे में
चन्दा में तारे में
कितना सारा बाजरा !
हाट का निराला है
मोतियों की माला है
खेत का दुशाला है
ओढ़ने में आला है
इतना सारा बाजरा !

दोनों कवियों की कविताओं पर 'इलशट्रेशन' अपरा थानवी ने किया है। शायद ऐसा है कि 'इलशट्रेशन' को लेकर दो तरह के दृष्टिकोणों से युक्त धाराऐं हैं। एक ओर वे कलाकार हैं जिनके लिए 'इलशट्रेशन' में करने को कुछ नहीं होता सिवा कन्टेन्ट को चित्र में ढाल देने के। दूसरी ओर वे कलाकार हैं जिनके लिए 'इलशट्रेशन' शब्द भाषा के समानान्तर चित्र भाषा में मौलिक सृजनात्मक अभिव्यक्ति है। अपरा जी के 'इलशट्रेशन' अभी उन्हें कंटेंट को चित्र में ला देने भर वाली धारा में ही रोके हुए हैं। ◆